समकालीन हिन्दी स्त्री आत्मकथाओं में स्त्री अस्मिता और सामाजिक संघर्ष

एमरेंसिया खलखो, शोधार्थी , हिन्दी उत्तर बंग विश्वविद्यालय, राजा राममोहनपुर, दार्जिलिंग-734013

सारांश

समकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री आत्मकथा ने स्त्री जीवन को समझने के लिए एक अलग और जरूरी दृष्टि सामने रखी है। इन आत्मकथाओं में स्त्री केवल अपने जीवन की घटनाओं को क्रम से प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि अपने अनुभवों के पीछे मौजूद सामाजिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को भी सामने लाती है। उसके जीवन में परिवार, विवाह, दाम्पत्य संबंध, शिक्षा, आर्थिक स्थिति, सामाजिक रूढ़ियाँ, लैंगिक भेदभाव और आत्मनिर्णय जैसे प्रश्न लगातार जुड़े रहते हैं। इसलिए स्त्री आत्मकथा को केवल निजी जीवन का लेखा-जोखा मानना पर्याप्त नहीं होगा।

कुसुम अंसल, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, रमणिका गुप्ता, कृष्णा अग्निहोत्री, निर्मला जैन तथा चंद्रकिरण सौनरेक्सा की आत्मकथाओं के संदर्भ में स्त्री अस्मिता और सामाजिक संघर्ष का अध्ययन किया गया है। इन लेखिकाओं के जीवनानुभव अलग-अलग सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियों से जुड़े हैं, फिर भी उनकी आत्मकथाओं में अपने स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान करने की कोशिश एक समान दिखाई देती है। कहीं स्त्री परिवार की अपेक्षाओं से संघर्ष करती है, कहीं विवाह और दाम्पत्य संबंध उसके सामने चुनौती बनकर आते हैं, तो कहीं शिक्षा और लेखन उसके लिए अपनी पहचान बनाने का माध्यम बनते हैं।

इन आत्मकथाओं में स्त्री को केवल पीड़ित या शोषित रूप में नहीं देखा गया है। वह अपने अनुभवों पर विचार करती है, प्रश्न उठाती है, सामाजिक मान्यताओं को परखती है और अपनी आवाज को सामने लाती है। इस प्रकार निजी जीवन का अनुभव व्यापक सामाजिक यथार्थ से जुड़ जाता है। यही कारण है कि समकालीन हिन्दी स्त्री आत्मकथाएँ स्त्री अस्मिता के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन और प्रतिरोध को समझने का भी महत्वपूर्ण माध्यम बनती हैं।

बीज शब्द: स्त्री आत्मकथा, स्त्री अस्मिता, सामाजिक संघर्ष, आत्मबोध, आत्मनिर्णय, पितृसत्ता, शिक्षा, आत्मनिर्भरता।

स्वतंत्र और सम्मानपूर्ण जीवन प्रत्येक व्यक्ति की मूल आवश्यकता है। व्यक्ति तभी अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है, जब उसे अपने विचार रखने और अपने जीवन से जुड़े निर्णय लेने की स्वतंत्रता मिले। भारतीय समाज में स्त्री को लंबे समय तक ऐसी स्वतंत्रता सहज रूप से नहीं मिली। उसकी पहचान प्रायः बेटी, पत्नी, बहू और माँ जैसी पारिवारिक भूमिकाओं से तय की जाती रही। उसके जीवन के अनेक फैसले परिवार और समाज की अपेक्षाओं के अनुसार निर्धारित होते रहे। इस स्थिति का प्रभाव उसकी शिक्षा, विवाह, रोजगार, प्रेम और व्यक्तिगत इच्छाओं पर भी पड़ा।

आधुनिक शिक्षा और सामाजिक जागरूकता के विस्तार के साथ स्त्री ने अपने जीवन और अपनी स्थिति को नए ढंग से देखना शुरू किया। साहित्य में भी उसने अपने अनुभवों को स्वयं व्यक्त करने की कोशिश की। आत्मकथा इस दृष्टि से विशेष विधा है, क्योंकि इसमें स्त्री स्वयं अपने जीवन की कथाकार बनती है। वह अपने सुख-दुःख, संघर्ष, असफलता, इच्छाओं और निर्णयों को अपनी दृष्टि से प्रस्तुत करती है।

हिन्दी की समकालीन स्त्री आत्मकथाओं में यह स्वर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, कृष्णा अग्निहोत्री, कुसुम अंसल, चंद्रकिरण सौनरेक्सा और निर्मला जैन जैसी लेखिकाओं ने अपने जीवनानुभवों के माध्यम से स्त्री के अनेक प्रश्नों को सामने रखा है। उपलब्ध शोध-सामग्री में भी इन लेखिकाओं की आत्मकथाओं को स्त्री अस्मिता, सामाजिक बंधनों, शिक्षा, परिवार और प्रतिरोध के संदर्भ में अध्ययन किया गया है।

स्त्री अस्मिता का पहला प्रश्न उसके स्वतंत्र अस्तित्व से जुड़ा है। स्त्री को केवल किसी संबंध के आधार पर नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जाना जरूरी है। कुसुम अंसल की आत्मकथा जो कहा नहीं गया में स्त्री के इसी आत्म-अस्तित्व का प्रश्न सामने आता है। अपने अनुभव को व्यक्त करते

हुए वे लिखती हैं—"मेरा यहाँ होना भी बहुत बेमानी जैसा था, जैसे मैं कोई इंसान नहीं, एक परछाई थी।"[1] यहाँ 'परछाई' का भाव स्त्री के पहचान-संकट को बहुत सहज ढंग से सामने रखता है। परिवार में उपस्थित होते हुए भी जब व्यक्ति को अपने निर्णय और इच्छाओं के लिए पर्याप्त स्थान नहीं मिलता, तब उसके भीतर अपने अस्तित्व को लेकर प्रश्न पैदा होते हैं। कुसुम अंसल के आत्मकथात्मक अनुभव इसी आत्मबोध की यात्रा को सामने लाते हैं। मन्नू भंडारी की एक कहानी यह भी में भी अपने 'मैं' को पहचानने की प्रक्रिया दिखाई देती है। वे लिखती हैं—"शायद यह उम्र का ही असर था कि नायिकाओं के साथ जीने की जगह नायिका बनकर जीना ज्यादा अच्छा लगता था।"[2] 'नायिका बनकर जीने' की इच्छा को केवल साहित्यिक रुचि मानना पर्याप्त नहीं है। इसमें अपने जीवन को स्वयं जीने और अपनी पहचान बनाने की इच्छा भी दिखाई देती है। मन्नू भंडारी के लिए लेखन धीरे-धीरे उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व का आधार बनता है। उनकी आत्मकथा में निजी जीवन और लेखकीय जीवन एक-दूसरे से जुड़े हुए दिखाई देते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा की कस्तूरी कुंडल बसै और गुड़िया भीतर गुड़िया में स्त्री की पहचान का प्रश्न अधिक संघर्षपूर्ण रूप में सामने आता है। ग्रामीण परिवेश, सामाजिक परंपराओं और पारिवारिक अपेक्षाओं के बीच स्त्री अपने अस्तित्व को पहचानने की कोशिश करती है। इस प्रक्रिया में उसकी आवाज धीरे-धीरे मजबूत होती जाती है। परिवार स्त्री के जीवन में संबंधों और सुरक्षा का आधार है, लेकिन कई बार यही परिवार उसकी स्वतंत्रता को सीमित करने वाली व्यवस्था भी बन जाता है। स्त्री से त्याग, सेवा और समर्पण की अपेक्षा की जाती है, जबकि उसकी व्यक्तिगत इच्छाओं और आकांक्षाओं को कम महत्व दिया जाता है। स्त्री आत्मकथाओं में इस दोहरी स्थिति का चित्रण बार-बार मिलता है।

कृष्णा अग्निहोत्री की लगता नहीं है दिल मेरा में निजी अनुभव सामाजिक यथार्थ से जुड़ जाते हैं। वे लिखती हैं—"जीवन तो सभी जीते हैं, परंतु कुछ कहने-सुनने से ही समय की कहानियाँ बनती हैं, बहुत झेला, बहुत भोगा, बहुत सहा... नहीं सहन हुआ तो लिख डाला।"[3] यह कथन उनके लेखन की पूरी प्रक्रिया को समझने में मदद करता है। उन्होंने जिन अनुभवों को जीवन में झेला, उन्हें भीतर दबाकर नहीं रखा। उन्हें शब्द देकर उन्होंने अपने अनुभवों को सामाजिक अनुभव में बदल दिया। इस तरह आत्मकथा व्यक्तिगत पीड़ा से आगे बढ़कर सामाजिक व्यवस्था पर सवाल उठाने लगती है।

प्रभा खेतान की अन्या से अनन्या में विवाह और स्त्री की स्वतंत्र पहचान का प्रश्न अलग रूप में सामने आता है। वे लिखती हैं—"मेरी राय में विवाह एक ओवररेटेड संस्था है। मैं इस संस्था को ज्यादा तरजीह देने से इनकार करती हूँ..."[4] यह कथन विवाह को लेकर उनकी स्वतंत्र सोच को सामने रखता है। उनके लिए विवाह केवल सामाजिक स्वीकृति का विषय नहीं है। व्यक्ति की इच्छा, भावनात्मक स्वतंत्रता और सम्मान भी संबंधों में जरूरी हैं। रमणिका गुप्ता की आत्मकथाओं में भी स्त्री के व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक सक्रियता के बीच गहरा संबंध दिखाई देता है। उनका जीवन यह बताता है कि स्त्री केवल घर की भूमिका तक सीमित नहीं है। वह सार्वजनिक जीवन में भाग ले सकती है और सामाजिक प्रश्नों पर अपनी भूमिका निभा सकती है। स्त्री की अस्मिता के निर्माण में शिक्षा की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा स्त्री को केवल ज्ञान नहीं देती, बल्कि उसे अपने अधिकारों और क्षमताओं को समझने का अवसर भी देती है। इसी कारण स्त्री आत्मकथाओं में शिक्षा का प्रश्न सीधे आत्मनिर्भरता और सामाजिक पहचान से जुड़ जाता है। कुसुम अंसल अपने अनुभव के संदर्भ में लिखती हैं—"मुझे लगा मेरा प्राप्त किया हुआ ज्ञान मेरे शून्य का 'फिलर' बन जाएगा और भीतर की दुर्बलताओं की खाई को पाट देगा।"[5] यहाँ शिक्षा का अर्थ केवल किताबी ज्ञान नहीं है। वह लेखिका के भीतर आत्मविश्वास पैदा करती है और उसे अपने व्यक्तित्व को नए ढंग से देखने की क्षमता देती है।

निर्मला जैन की जमाने में हम में भी शिक्षा और बौद्धिक विकास के माध्यम से स्त्री की स्वतंत्र पहचान बनने की प्रक्रिया दिखाई देती है। उनका साहित्यिक जीवन यह बताता है कि स्त्री की पहचान केवल घरेलू भूमिकाओं से तय नहीं होती। उसके विचार, ज्ञान और रचनात्मक क्षमता भी उसके व्यक्तित्व का हिस्सा हैं। चंद्रकिरण सौनरेक्सा की पिंजरे की मैना में स्त्री के सामने परिवार और नौकरी दोनों की जिम्मेदारियाँ दिखाई देती हैं। कामकाजी स्त्री के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता एक ओर शक्ति देती है, तो दूसरी ओर घर और बाहर की दोहरी जिम्मेदारी उसके सामने नई कठिनाइयाँ खड़ी करती है। इस प्रकार आर्थिक

स्वतंत्रता के साथ सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियों का संतुलन भी उसके संघर्ष का हिस्सा बन जाता है।

कौशल्या वैसन्त्री की आत्मकथा स्त्री-अस्मिता और आत्मसम्मान की चेतना का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। उन्होंने अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं लेने का साहस किया। वे लिखती हैं— "जिन्दगी के जितने निर्णय मैं ले सकती थी मैंने लिये अपने पति के विरोध के बावजूद। मैं उस समय भयंकर शारीरिक यातना सहकर चुकायी।"[6] यह कथन बताता है कि स्त्री के आत्मनिर्णय के अधिकार को परिवार और समाज आसानी से स्वीकार नहीं करते। अपने अधिकारों के लिए आगे बढ़ने वाली स्त्री को कई बार शारीरिक और मानसिक यातनाओं का सामना करना पड़ता है। स्त्री की अपनी बात कहने की स्वतंत्रता भी उसकी अस्मिता का जरूरी हिस्सा है। आत्मकथा में लेखिका अपने जीवन के उन अनुभवों को सामने लाती है जिन्हें समाज कई बार निजी कहकर दबा देता है। इसलिए स्त्री के लिए आत्मकथा लिखना केवल साहित्यिक काम नहीं, बल्कि अपने अनुभवों को स्वीकार करने और अपनी आवाज को सामने लाने की प्रक्रिया भी है। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं में ग्रामीण स्त्री के जीवन, उसकी इच्छाओं और उसके संघर्षों को खुलकर व्यक्त किया गया है। वहीं कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने निजी जीवन के कठिन अनुभवों को लेखन का विषय बनाया। कुसुम अंसल ने अपने भीतर के अकेलेपन और पहचान के प्रश्न को शब्द दिए। मन्नू भंडारी ने पारिवारिक और लेखकीय जीवन के बीच के तनाव को सामने रखा। प्रभा खेतान ने स्त्री के भावनात्मक और सामाजिक अस्तित्व पर सवाल उठाए। रमणिका गुप्ता ने स्त्री के संघर्ष को सामाजिक और राजनीतिक सक्रियता से जोड़ा। इस संदर्भ में दूसरी स्त्री-विमर्श संबंधी पुस्तकों का अध्ययन भी उपयोगी है। उदाहरण के लिए, स्त्री अधिकारों पर केंद्रित लेखन स्त्री की स्वतंत्रता को केवल निजी विषय न मानकर उसके सामाजिक अधिकारों और सम्मान से जोड़ता है। इससे आत्मकथाओं में व्यक्त व्यक्तिगत संघर्ष को व्यापक सामाजिक संदर्भ में समझने में सहायता मिलती है।

राजवन्ती आगे लिखती हैं— "चूँकि सुरक्षा के नाम पर पुरुष स्त्री का प्रवक्ता और बाहरी दुनिया से उसके सम्पर्क का सेतु बन जाता है इसलिए प्रायः वह व्यवहार बुद्धि स्त्री के अंदर विकसित ही नहीं होने दी जाती, लेकिन इससे भी ज्यादा बड़ा सच यह है कि सुरक्षा के नाम पर स्त्री को नियंत्रित करने का व्यवहार बुद्धि पुरुष के पास होती है।"[7] इस कथन से स्पष्ट होता है कि स्त्री की निर्भरता केवल व्यक्तिगत स्थिति नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था से निर्मित होती है। सुरक्षा और संरक्षण के नाम पर स्त्री की स्वतंत्रता सीमित की जाती है और उसे पुरुष पर निर्भर रहने के लिए तैयार किया जाता है। हालाँकि सभी आत्मकथाओं में दाम्पत्य जीवन का केवल नकारात्मक पक्ष ही नहीं मिलता। कुछ आत्मकथाओं में पति-पत्नी के बीच विश्वास और सहयोग के उदाहरण भी दिखाई देते हैं।

इस प्रकार लेखन स्वयं स्त्री के लिए प्रतिरोध का एक रास्ता बन जाता है। वह अपनी कहानी कहकर केवल अपने अतीत को दर्ज नहीं करती, बल्कि उन सामाजिक स्थितियों को भी सामने लाती है जिनके कारण उसके जीवन में संघर्ष पैदा हुआ। स्त्री के सामाजिक संघर्ष का एक बड़ा कारण वे रूढ़ियाँ हैं जो उसके जीवन के लिए पहले से कुछ भूमिकाएँ निर्धारित कर देती हैं। कैसी बेटी होनी चाहिए, कैसी पत्नी, कैसी माँ और कैसी बहू—इन सभी के लिए समाज की अपनी अपेक्षाएँ हैं। इन अपेक्षाओं से बाहर निकलने वाली स्त्री को कई बार स्वार्थी, विद्रोही या चरित्रहीन तक कहा जाता है। मैत्रेयी पुष्पा के आत्मकथात्मक लेखन में ऐसी सामाजिक धारणाओं से संघर्ष दिखाई देता है। उनके यहाँ स्त्री अपनी इच्छाओं को पहचानती है और उन्हें दबाने के बजाय उनके बारे में सोचती है। प्रभा खेतान की आत्मकथा में भी सामाजिक मर्यादाओं और व्यक्तिगत निर्णय के बीच का तनाव दिखाई देता है। रमणिका गुप्ता के जीवन में यह संघर्ष सामाजिक और सार्वजनिक सक्रियता का रूप लेता है।

इस तरह स्त्री अस्मिता केवल अपने बारे में सोचने का प्रश्न नहीं है। यह उस सामाजिक व्यवस्था को समझने और बदलने का प्रश्न भी है, जो स्त्री की स्वतंत्रता की सीमा तय करती है।

समकालीन हिन्दी स्त्री आत्मकथाओं का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि स्त्री अस्मिता और सामाजिक संघर्ष एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। कुसुम अंसल, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, रमणिका गुप्ता, कृष्णा अग्निहोत्री, निर्मला जैन और चंद्रकिरण सौनरेक्सा की आत्मकथाओं में जीवन के अनुभव

अलग-अलग हैं, लेकिन अपने स्वतंत्र अस्तित्व को पहचानने की कोशिश एक सामान्य सूत्र के रूप में दिखाई देती है।

परिवार, विवाह, दाम्पत्य संबंध, शिक्षा, आर्थिक स्थिति, सामाजिक रूढ़ियाँ और पितृसत्तात्मक सोच इन लेखिकाओं के जीवन में अलग-अलग रूपों में सामने आती हैं। कहीं परिवार स्त्री को सहारा देता है, तो कहीं वही उसकी स्वतंत्रता को रोकता है। कहीं विवाह भावनात्मक संबंध का आधार बनता है, तो कहीं वह मानसिक दबाव और अकेलेपन का कारण बन जाता है। शिक्षा और लेखन कई लेखिकाओं के लिए अपने व्यक्तित्व को विकसित करने और अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के साधन बनते हैं। इन आत्मकथाओं की खास बात यह है कि स्त्री को केवल पीड़ित के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। वह अपने अनुभवों को समझती है, उनसे सवाल करती है और अपनी आवाज को सामने लाती है। उसका संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं रह जाता, बल्कि सामाजिक प्रश्न बन जाता है। इसी कारण स्त्री आत्मकथा निजी जीवन और सामाजिक यथार्थ के बीच एक पुल का काम करती है।

अंततः कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी स्त्री आत्मकथाओं में अस्मिता की खोज अपने स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान से शुरू होकर सामाजिक प्रतिरोध तक पहुँचती है। इन लेखिकाओं ने अपने जीवन के अनुभवों को शब्द देकर उन स्थितियों को सामने रखा है, जिन्हें लंबे समय तक निजी कहकर दबाया जाता रहा। उनकी आत्मकथाएँ स्त्री के आत्मसम्मान, आत्मनिर्णय और स्वतंत्र पहचान की आकांक्षा को व्यक्त करती हैं। साथ ही वे यह भी बताती हैं कि स्त्री की मुक्ति केवल उसके व्यक्तिगत जीवन का प्रश्न नहीं, बल्कि समानता और मानवीय सम्मान पर आधारित समाज की जरूरत है।

संदर्भ-सूची:

1. अंसल, कुसुम,'जो कहा नहीं गया' राजपाल एंड संज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण:1996,पृ.57
2. भंडारी, मन्नू,'एक कहानी यह भी' राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति:2007 पृ.18
3. अग्निहोत्री, कृष्णा,' लगता नहीं है दिल मेरा',सामायिक बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2011 पृष्ठ-8
4. खेतान, प्रभा,'अन्या से अनन्या' राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति:2007, पृ-72
5. अंसल, कुसुम,'जो कहा नहीं गया' राजपाल एंड संज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण:1996, पृ.89
6. वैसन्त्री, कौशल्या, दोहरा आभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन बी-109, प्रीत बिहार, दिल्ली, प्रथम प्रकाशन-1999,पृ.106
7. संवेद पत्रिका, पृ.95